“कृपा आधारित विवेक”

“मस्तिष्क को शुद्ध रखने के लिए एंटीवायरस ही है सत्संग”

परम पूज्य संत आचार्य श्री अमिताभ जी महाराज

” ऋग्वेद का सूत्र है कि हमारा हाथ ईश्वर है एवं हमारा हाथ ईश्वर से भी अधिक बलवान है क्योंकि वह ईश्वर की कृपा से युक्त है। ईश्वर के द्वारा मनुष्य को विवेक प्रदान किया गया है यह निर्णय करने के लिए कि क्या उचित है एवं क्या अनुचित है?”

ठाकुर जी यह भी कहते हैं के बुद्धि नष्ट हो जाती है तो सब कुछ नष्ट हो जाता है उसी प्रकार से जैसे कीमती से कीमती लैपटॉप का माइक्रोप्रोसेसर यदि किसी प्रकार से वायरस के चंगुल में आ जाए तो पूरा का पूरा लैपटॉप बेकार हो जाता है, उसी प्रकार से दैनिक जीवन में जिस प्रकार की भावनाएं जैसी महत्वाकांक्षआएं जैसा क्लेश जैसी निंदा स्तुति हमारे मस्तिष्क में प्रवेश करती है, वह भी जंक फाइल की तरह हमारे मस्तिष्क के माइक्रोप्रोसेसर को नष्ट करने में पूर्ण सहयोग करती है, यदि उसमें एक पंजीकृत एंटीवायरस सॉफ्टवेयर इंस्टॉल न हो। कंप्यूटर के समान व्यक्ति के मस्तिष्क को शुद्ध रखने के लिए कौन सा एंटीवायरस अनिवार्य हो सकता है वह एंटीवायरस है सत्संग।

सत्संग से निकलने वाली सकारात्मक ऊर्जा व्यक्ति के मस्तिष्क में व्याप्त नाना प्रकार की तामसी वृत्ति को नष्ट करने में पर्याप्त सहयोगी सिद्ध होती है। तो जिस प्रकार से अत्यंत कीमती बेल्जियम ग्लास को भी निरंतर साफ करने की आवश्यकता होती है अन्यथा व्यक्ति उसमें अपना प्रतिबिंब नहीं देख

सकता, उसी प्रकार से व्यक्ति के मस्तिष्क की शुद्धता की निरंतरता को बनाए रखने के लिए मात्र एक बार का सत्संग पर्याप्त नहीं है अपितु निरंतर निरंतर सत्संग के माध्यम से व्यक्ति के चित् का और मन का और मस्तिष्क का परिशोधन होता रहना अनिवार्य है

बहुत कष्ट के उपरांत व्यक्ति को मनुष्य जीवन प्राप्त होता है तथा यह अत्यंत दुर्लभ मनुष्य शरीर भी अत्यंत क्षणभंगुर है अर्थात जिस प्रकार से कच्ची मिट्टी का घड़ा होता है उंगली मार देने पर या उंगली मार देने पर या थोड़ा सा पानी पड़ जाने पर तुरंत गल करके नष्ट हो जाता है। उसी प्रकार से यह जीवन कितने दिन चलेगा, कितने क्षण चलेगा, कितने वर्ष चलेगा कोई इसके बारे में आश्वस्त प्रदान नहीं कर सकता।

तो जो इतना क्षणभंगुर है, उसका प्रयोग मात्र अर्थ के लिए, महत्वाकांक्षा के लिए, मात्र किसी को कष्ट प्रदान करने के लिए, मात्र अपनी प्रतिष्ठा को स्थापित करने के लिए, मात्र अपनो को अपमानित करने के लिए क्यों किया जाए?

यदि हम इस क्षण भंगुर शरीर को ठाकुर जी के चरणों में समर्पित कर दें तथा अपने नियमित कार्यों को भी ईश्वर के चरणों में अर्पित करते आगे बढ़े और यह प्रयास करें कि हमारे माध्यम से किसी को कष्ट ना हो, सबको सांस लेने की स्वतंत्रता प्राप्त होती रहे इससे अच्छा धर्म और कौन सा हो सकता है?

श्रीमद्भागवत की परंपरा है कि स्वयं द्वारा किए जाने वाले कार्यों को ईश्वर को अर्पित कर देने से वह पूजा में परिणत हो जाते हैं। जैसे हम सभी लोग भोजन ग्रहण नहीं करते बल्कि हम सब प्रसाद ग्रहण करते हैं। क्योंकि उस भोजन को बनाने में जो भी किसी प्रकार का व्यतिक्रम होता है वह ठाकुर जी को अर्पित कर देने के उपरांत नष्ट हो जाता है और वह प्रसाद हो जाता है।

उसी प्रकार से हम यथासंभव ठाकुर जी की सेवा करें, हमारी समस्त इन्द्रियां जो हैं, ईश्वर उन्मुख हो, हमारे नेत्र शुभ देखें, हमारे कान शुभ सुने, हमारा मुख् शुभ बोले, हम शुभ चिंतन करें, हमारे चिंतन में शुभ वृत्ति का स्थान हो।

यथासंभव इसलिए कह रहा हूं क्योंकि मनुष्य के जीवन में नाना प्रकार के उतार-चढ़ाव आते हैं और जीवन में आदर्श कुछ भी नहीं होता किंतु आदर्श के लिए सतत प्रयत्नशील रहना ही आदर्श होता है ऐसी मेरी मान्यता है।

क्योंकि हमारे शास्त्रों का स्पष्ट मत है कि हम कितनी भी बड़ी पूजा क्यों न संपन्न करने की सामर्थ रखते हो, कितना ही दूध क्यों न महादेव के ऊपर चढ़ा सकते हो, किंतु यदि हमारे चित्तवृत्ति में अन्यों के प्रति क्लेश द्वेष और प्रतिहिंसा का भाव है तो ईश्वर स्पष्ट रूप से उस पूजा को कभी स्वीकार नहीं करते हैं।

इस बात को प्रत्येक व्यक्ति को अपने चित्तवृत्ति में स्थापित कर लेना चाहिए। अतः हम अपने नेत्रों के जल से भी ईश्वर को अर्घ्य प्रदान कर सकते हैं, बशर्ते कि हमारे चित्त में किसी प्रकार का कोई कूट कपट न हो।

“”””””””””””””””””””””””””””””””””””””””

<u>परम पूज्य संत आचार्य श्री अमिताभ जी महाराज</u>